Department :- Ayurved Samhita & Siddhant

Topic :- चतुर्दश तन्त्रदोष

- अरुणदत्त ने पन्द्रह तन्त्रदोषों का वर्णन किया है।
- शंकर शर्मा-कृत तन्त्रयुक्ति में चौदह तन्त्रदोषों का उल्लेख किया गया है।
- केवल 'भिन्नक्रमम्' का उल्लेख शंकर शर्मा ने नहीं किया है।

- १. अप्रसिद्ध २. दुष्पणीत ३. असङ्गतार्थ ४. असुखारोहि
- ५. विरुद्ध १ अतिविस्तृत ७. अतिसंक्षिप्त ८. अप्रयोजन
- ९. भिन्नक्रम १०. पुनरुक्त ११. निश्धमाणक
- १२. असमाप्तार्थक १३. संदिग्ध
- १४. अपार्थक १५. व्याहत।

# अप्रसिद्ध

- (१.) अप्रसिद्ध का तात्पर्य 'यल्लोके नातीव प्रसिद्धम्' होता है अर्थात् जो लोक में अप्रसिद्ध हो। इसका दो अर्थ ग्रहण किया जा सकता है-एक तो उस ग्रन्थ का लोक में प्रसिद्ध न होना तथा दूसरे ग्रन्थ में अप्रसिद्ध पदों का प्रयोग करना। चरकसंहिता में शास्त्र परीक्षा के अन्तर्गत कहा गया है कि आप्ती द्वारा अनुमोदित व लोकमान्य शास्त्र का अध्ययन करना चाहिए। इसका अर्थ यह है कि जो ग्रन्थ लोकमान्य न हो अथवा लोक में प्रसिद्ध न हो उसका अध्ययन नहीं करना चाहिए। अप्रसिद्ध का दूसरा अर्थ ही अरुणदत्त ने ग्रहण किया है कि उस तन्त्र में अप्रसिद्ध पदों का प्रयोग तन्त्रदोष है यथा- रजस्वला स्त्री के लिये अप्रसिद्ध पर्याय उपक्या का प्रयोग करना अप्रसिद्ध तन्त्रदोष है। यदि ग्रन्थ में तुलसी के अप्रसिद्ध पर्याय अपेतराक्षसी का प्रयोग किया जाता है तो यह तन्त्रदोष है। इस प्रकार ग्रन्थोक्त विषयों का लोक में अतिप्रसिद्ध नहीं होना तथा ग्रन्थ में अप्रसिद्ध पदों का प्रयोग करना अप्रसिद्ध तन्वदोष है।

- २) दुष्प्रणीत 'सूत्रभाष्यप्रयोजनरहितम्' अर्थात् तन्त्र या ग्रन्थ का सूत्रव भाष्य का प्रयोजनरहित होना तन्त्रदोष है। यदि ग्रन्थ में केवल सूत्र हो हो, भले ही वह प्रयोजनयुक्त हो या केवल भाष्य ही हो अथवा सूत्र-भाष्य हो, परन्तु ग्रन्थ निष्ठयोजन हो तो इस दोष को दुष्वणीत दोष कहा जाता है।

- असङ्गतार्थ विषयों की असम्बद्धता को असङ्गतार्थ कहा जाता है। इसके लक्षण में कहा गया है कि- 'यत्सूत्रेणासम्बद्धं' अर्थात् जिसके सूत्र असम्बद्ध हो। सूत्र विषयवस्तु के सम्बन्धित न होकर अथवा विषय की क्रमिकता से असम्बद्ध हो तो उसे असङ्गतार्थ दोष कहा जाता है। असङ्गतार्थ का तात्पर्य, असङ्गत अर्थ वाला अथवा असम्बद्ध अर्थ वाला है। इस प्रकार जो सूत्र या जिस ग्रन्थ के सूत्र असम्बद्ध विषय वाले होते हैं, उन्हें असङ्गतार्थ कहा जाता है।

- (४) असुखारोहि पद-यदि तन्त्र या ग्रन्थ में ऐसे पद विद्यमान हो जिनकेउच्चारण करने में दुःख या कष्ट होता हो तो इस प्रकार के दोष को अमुखारीहि पददोष कहा जा सकता है- यत्पदसत्रिवेशस्य विषमतया दुःखेनोच्चार्यते चर्करीतादियायम प्राचीन ग्रन्थों को उच्चारित करके उसका पाठ कर अभ्यास किया जाता थाः अतः अमुखारोहि पद को भी तन्वदोष माना जाता था।, परन्तु आज को पठन-प्रणाली चित्र है। अतः असुखारोहि पददोष से कठिन व लम्बे पदों का बन्य में सत्रिवेश किया जाता है। किन्तु कठिन शब्द व दीर्घ शब्दसत्रिवेश से अर्थज्ञान में कठिनाई होती है।

- विरुद्ध 'यद् दृष्टान्तसिद्धान्तसमयैर्विरुद्धम् अर्थात् जिस तन्व या शास्त्र में दृष्टान्त व प्रतिज्ञा की विरुद्धता हो इस दोष को विरुद्ध दोष कहा जाता है। दृष्टान्त-विरुद्ध का तात्पर्य विपरीत उदाहरण से है। जैसे पुरुष की नित्यता सिद्धिहेतु अनित्य द्रव्य-पट का दृष्टान्त रूप में प्रस्तुत करना, अथवा लेखन कर्म करने वाले द्रव्य के रूप में घृतादि स्नेह का दृष्टान्त रूप में प्रस्तुत करना दृष्टान्त-विरुद्ध है। इसो प्रकार सिद्धान्त के विरुद्ध बातों का उल्लेख करना, जैसे- वमन पित्तदोष का निर्हरण करता है या विरेचन कफदोष का निर्हरण करता है। यह सिद्धान्तविरुद्ध है। इसी प्रकार यदि ग्रन्थ में समय-विरुद्ध (मन्थकार की प्रतिज्ञा के विपरीत) वचन होता है तो उसे समय-विरुद्ध दोष कहा जाता है। यथा आप्तोपदेश का उल्लंघन करते हुए यदि तथ्यो को प्रकाशित किया जाता है तो यह समय-विरुद्ध दोष कहा जायेगा।

- ६. अतिविस्तृत- अनावश्यक रूप से विस्तार किये गये विषयों का विवरणजिन अन्धों में उपलब्ध होता है, उसे अतिविस्तृत दोष कहा जाता है। यद्यपि आज विस्तार युग है। एक-एक व्याधियों पर एक-एक स्वतंत्र ग्रन्थों की रचना हो रही है। अतः इसको तन्त्रदोष स्वीकार किया जाय या नहीं, यह विचारणीय है। इतना अवश्य है कि यदि अनावश्यक रूप से ग्रन्थ का विस्तृत स्वरूप हो तो यह निश्चितरूपेण तन्वदोष है। कभी-कभी उपयोगी तथ्य भी इतने विस्तृत होते। ने विस्तृत होते हैं कि अतिशय विवरण वाग्जाल में मुख्य प्रतिपाद्य विषय का ज्ञान ही नहीं हो पाता। यथा-रसानुसार समस्त द्रव्यों का यदि उल्लेख किया जाता है तो यह उपयोगी होते हुए भी किस रस वाले किस द्रव्य का उपयोग अधिक हितकर है- यह तथ्य नहीं ज्ञात होता, जिससे अन्य कीसार्थकता ही सन्दिग्ध हो जाती है।

- ७. अतिसंक्षेप किसी ग्रन्थ में विषयवस्तु को अति संक्षिप्त रूप में कहना भी तन्त्रदोष होता है। इससे विषय का स्पष्ट प्रकाशन नहीं हो पाता। अस्पष्ट विषयबोध होने के कारण उस ग्रन्थ की लोकमान्यता नहीं रह जाती। कतिपय अन्धों में इस प्रकार के सूत्र उल्लिखित है कि उनकी संक्षिप्तता से विषय-वस्तु स्याह नहीं हो पाता, इस स्थिति में अन्यकार जो कहना चाहते हैं वह अर्थ पाठक न लगाकर अपनी बुद्धि के अनुसार पृथक् अर्थ लगा लेते हैं।

- जिस ग्रन्थ क प्रयोजन न हो तो उसका ग्रहण कौन करेगा। हालांकि विषय से सम्बन्धित प्रयोजनके अवश्य करना चाहिए। इसलिए प्राचीन परम्परा में ग्रन्थ प्रारम्भ करने के ही अन्य प्रयोजनका उल्लेख करना आवश्यक समझा जाता था। आयुर्वेद के किमी ग्रन्थ का अवानोकन करें तो पाया जाता है कि ग्रन्थारम्भ के साथ ही अन्य-प्रयोजन उल्लेख किया गया है। यथा चरकसंहिता के सूत्रस्थान अ. १ में ही कहा गये। कि धातुसाम्यक्रिया चोक्ता तन्त्रस्यास्य प्रयोजनम्' अर्थात् इस तन्त्र चरकसंहिता प्रयोजन धातुओं को सम रखना है। इसी प्रकार अष्टांगसंग्रह के प्रारम्भ में ही ग्रन्थरचन के प्रयोजन पर पूर्णतः प्रकाश डाला जाता है। आज भी ग्रन्थारम्भ से पूर्व प्राक्कथानक भूमिका के द्वारा प्रयोजन पर प्रकाश डाला जाता है। सुश्रुतसंहिता में तन्नयुक्ति शाय करने से पूर्व ही इसके प्रयोजन को प्रकाशित किया गया है। इस प्रकार किसी ग्रन्थ वे उस ग्रन्थ के प्रयोजन का उल्लेख न करना अथवा उसके प्रयोजन को प्रकाशित र करना तन्त्रदोष होता है।

- ९. सन्दिग्ध किसी विषय को निश्चयात्मक रूप से प्रकट न कर संदिग्ध रूप में प्रस्तुत करना संदिग्ध दोष कहा जाता है। जैसे- पुनर्जन्म होता है या नहीं? इसका निर्णय न कर केवल पूर्वपक्ष ही प्रस्तुत करना संदिग्ध विषय हो जाता है। प्रायशः कई ग्रन्थों में इस तरह के दोष दृष्टिगोचर होते हैं।

- १०. पुररुक्त-एक ही विषय को बार-बार कहना अथवा एक पद केबार-बार प्रस्तुत करना पुनरुक्त दोष कहा जाता है। इसे भी तन्त्रदोष माना गया है। आवश्यकतानुसार यदि विषय को कहना आवश्यक ही होता है तो इसके लिए तन्त्रयुक्ति में अतीतावेक्षण व अनागतावेक्षण का निर्देश दिया गया है। जिससे अन्य में पुनरुक्त दोष से बचा जा सके। अतीतावेक्षण या अनागतावेक्षण का उपयोग न कर बा बार विषयवस्तु का उल्लेख करने पर तन्त्र में आये दोष को पुनरुक्त दोष कहा जातहै।

- ११. निषप्रमाणक ग्रन्थ में जो विषय प्रस्तुत किये गये हों उन विषयवस्तुओं की पुष्टि के लिए किसी प्रकार का प्रमाण प्रस्तुत न करना निष्यमाकण दोष कहा जा है। आज भी जो ग्रन्थ रचित होते हैं, उसमें अपने पक्ष की पुष्टि के लिए कोई न को प्रमाण अवश्य प्रस्तुत किया जाता है, बिना प्रमाण लोक में ग्रन्थकार के पक्ष में स्वीकार नहीं किया जाता।१२. असमाप्तार्थ किसी अन्य में जब किसी विवेच्य विषयका विवेचन नहीं किया जाता, जिससे कि विषय-वस्तू स्पष्ट हो जाय तथा वर्णन या विवेचन को अपूर्णावस्था में ही समाप्त कर दिया जाता है तो इस दोष को असमाप्तार्थ दोष कहते है। असमाप्तार्थ का तात्पर्य विषयसमाप्ति पर उसका अर्थ स्पष्ट न होना। इस प्रकार जिस विषय का वर्णन या विवेचन इस प्रकार से समाप्त कर दिया जाता है कि उसका अर्थ स्पष्ट न हो पाये तो इसे असमाप्तार्थ दोष कहा जाता है।

- १३. अनर्थक जिसमें विषय-विवरण वाले पदों से उनका उचित अर्थ नहीं निकलता उस दोष को अनर्थक दोष कहा जाता है।१४. व्याहत दोष पूर्व में कहे गये वाक्य की युक्ति से अपर-वाक्यअथवा अपरवाक्य की युक्ति से पूर्व के वाक्य का खण्डित होना व्याहत दोष कहा जाता है। अर्थात् पहले कहे गये अपने ही वाक्य के विरुद्ध या उसे खण्डित करने वाले विषय-वस्तु का बाद में उल्लेख करना अथवा बाद में ऐसे विषय का उल्लेख किया जाय या ऐसा वाक्य कहा जाय जिससे ग्रन्थोक्त अपनी ही पूर्व में कही गई बात खण्डित होती है तो इस दोष को व्याहत अर्थात् खण्डन दोष कहा जाता है। जैसे-किसी ग्रन्थ में कहा जाता है कि प्रमेही में स्वेदन नहीं करना चाहिए तथा बाद में उसी ग्रन्थ में प्रमेही में स्वेदन का निर्देश दिया जाय तो इसे व्याहत दोष कहा जाता है।

- १५. भिन्नक्रम दोष- यह चौदह तन्त्रदोषों के अतिरिक्त तन्वदोष है। इसकाउल्लेख आचार्य अरुणदत ने किया है। जिस ग्रन्थ में किसी विषय का वर्णन क्रमानुसार न कर यत्र-तत्र किया गया हो अथवा किसी विषय का वर्णन करते समय एक विषय का कुछ वर्णन कर पुनः दूसरे विषय का वर्णन प्रारम्भ कर दिया जाय तो इस दोष को भिन्नक्रम दोष कहा जाता है। जैसे- रस विषय का प्रारम्भ कर बिना इसको पूर्ण किये विपाक या वीर्य प्रकरण का प्रारम्भ कर देना, भित्रक्रम दोष कहा जाता है। इसी प्रकार शारीर-विषयक विषय का एक अध्याय सूत्रस्थान में, एक अध्याय विमान में एक तथा अन्य का चिकित्सा स्थान में उल्लेख करना भिन्नक्रम दोष कहा जाता है।